भगवद्धाम की प्राप्ति भी हो जाती है। केवल श्रीकृष्णप्रसाद को ग्रहण करने से अल्पाहार का अभ्यास अपने-आप हो जाता है। अल्पाहार इन्द्रियनिग्रह में बड़ा सहायक है; इन्द्रियों को वश में किए बिना प्रापञ्चिक बन्धन से मुक्ति नहीं हो सकती।

5/4

सर्वेऽप्येते यज्ञविदो यज्ञक्षपितकल्मषाः।
यज्ञशिष्टामृतभुजो यान्ति ब्रह्म सनातनम्।।३०।।

सर्वे=सब; **अपि**=बाह्य दृष्टि से भिन्न प्रतीत होने पर भी; **एते**=ये; **यज्ञविदः**=यज्ञ के प्रयोजन को जाने वाले; **यज्ञ**=यज्ञ द्वारा; **क्षपित**=शुद्ध हुए; **कल्मषाः**=पाप से; **यज्ञशिष्ट अमृतभुजः**=जो यज्ञों के प्रसाद रूप अमृत का आस्वादन कर चुके हैं; **यान्ति**=प्राप्त करते हैं; **ब्रह्म**=परमब्रह्म; **सनातनम्**=नित्य धाम को।

अनुवाद

ये सभी यज्ञ करने वाले, जो यज्ञों का तात्पर्य जानते हैं, पापकर्मों से मुक्त हो जाते हैं और इन यज्ञों के प्रसादरूप अमृत का आस्वादन करके शाश्वत् परमधाम को प्राप्त करते हैं।।३०।।

तात्पर्य

द्रव्ययज्ञ, स्वाध्याययज्ञ, योगयज्ञ आदि विविध यज्ञों के पूर्व वर्णन से ज्ञात होता है कि इन सभी का उद्देश्य इन्द्रियों को वश में करना है। भवरोग का मूल कारण इन्द्रियतृप्ति-परायणता है; अतएव इन्द्रियतृप्ति से ऊपर उठे बिना सच्चिदानन्द-तत्त्व की प्राप्ति नही हो सकती। यह शाश्वत् ब्रह्म-परिवेश का स्तर है। पूर्वोक्त यज्ञ प्रापञ्चिक जीवन में बनने वाले अपकर्मों से कर्ता का शोधन करते हैं। इस आत्मोन्नति के द्वारा केवल इस जीवन में ही सुख-वैभव की प्राप्ति नहीं होती, वरन् अन्त में यथायोग्य निर्विशेष ब्रह्मैक्य अथवा भगवान् श्रीकृष्ण के सान्निध्य में भगवद्धाम की प्राप्ति भी हो जाती है।

6/4

नायं लोकोऽस्त्ययज्ञस्य कुतोऽन्यः कुरुसत्तम।।३१।।

न=नहीं; **अयम्**=यह; **लोकः**=संसार; **अस्ति**=है; **अयज्ञस्य**=यज्ञ न करने वाले मूर्ख का; **कुतः**=कैसे होगा; **अन्यः**=दूसरे (परलोक); **कुरुसत्तम**=हे कुरुश्रेष्ठ अर्जुन।

अनुवाद

हे कुरुश्रेष्ठ अर्जुन! यज्ञ न करने वाले के लिए यह लोक अथवा यह जीवन भी सुखदायक नहीं, फिर परलोक कैसे होगा?।।३१।।

तात्पर्य

जीव भवसागर की किसी भी योनि में क्यों न हो, अपना यथार्थ स्वरूप उसे अज्ञात ही रहता है। कहने का तात्पर्य यह है कि अपने पिछले पापमय जीवनों के फलस्वरूप ही हमें संसार-बन्धन की प्राप्ति हुई है। पापमय जीवन का कारण अज्ञान है और जब तक जीवन पापपूर्ण रहता है, तब तक भवरोग निरन्तर बना रहता है। इस बन्धन-चक्र से मुक्ति का एकमात्र द्वार मानव शरीर है। अतएव धर्म, अर्थ, मर्यादित